IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

'डूब' उपन्यास में किसानों की स्थिति का अध्ययन

शिवानी अहिरवार, पी-एच.डी. शोधार्थी (हिन्दी विभाग)

हिंदी अध्ययन शाला एवं शोध केंद्र महाराज छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय छतरपुर (मध्य प्रदेश)

डॉ के. सी. जैन, शोध निर्देशक प्राध्यापक (हिंदी विभाग)

हिंदी अध्ययन शाला एवं शोध केंद्र शासकीय पी.जी. कॉलेज टीकमगढ़ (मध्य प्रदेश)

शोध-सार :- 'डूब' उपन्यास ग्रामीण जीवन पर बांध परियोजना का प्रभाव प्रदर्शित करता हुआ ग्रामीणों की समस्याओं को पात्रों के संवादों के माध्यम से यथार्थता के साथ प्रस्तुत करता है यह शासन , प्रशासन द्वारा किए गए प्रयासों और धरातल पर उनकी वास्तविकता में अंतर को स्पष्ट करता है। यह उपन्यास विकास परियोजना के कारण किसानों की परिस्थितियों में आए परिवर्तन जैसे खेती की जमीन का डूब क्षेत्र में आना, बेरोजगारी ,आर्थिक तंगी आदि पर भी चर्चा करता है। विस्थापन के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था की कमजोर पड़ती स्थिति को उपन्यास में निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया गया है।

मूल शब्द :- विस्थापन , किसान , विकासपरियोजना , ग्रामीण

प्रस्तावना :- 'डूब' उपन्यास बुंदेलखंड अंचल पर केंद्रित है जहां बांध परियोजना के कारण गांव को खाली कराया जा रहा है, विस्थापित किए गए क्षेत्र के अंतर्गत बारी, शंकरपुर ,पंचमनगर, सिरसोदिया, सिद्धपुर, केशोपुर इत्यादि गांव आते हैं। भारत की ग्रामीण स्थिति और विकास के कारण गांव में फैलती अव्यवस्था को जीवंत और मार्मिक माध्यम से इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। शैली और भाषा की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण कृति है। राजनीति और प्रशासन का गठजोड़ ग्रामीण अर्थव्यवस्था को कैसे तहस-नहस कर सकता है ,यह डूब में साफ प्रदर्शित होता है। ग्रामीण किसानों पर विकास प्रक्रिया के नाम पर किए गए शोषण की वास्तविकता है 'डूब'। मध्य प्रदेश साहित्य अकादमी ने 'डूब' उपन्यास के लिए वीरेंद्र जैन को अखिल भारतीय वीर सिंह देव पुरस्कार से अलंकृत भी किया है। विस्थापन के कारण होने वाली समस्याओं पर ग्रामीण किसानों के पक्षों को रखते हुए विस्तार से स्पष्ट चर्चा की गई है ग्रामीण जीवन पर पड़ने वाले दुष्परिणामों को वास्तविकता से चित्रित किया गया है।

विषय वस्तु :- सरकार जमीन लेने से पहले किसानों से बड़े-बड़े वादे करती है किसानों का विस्थापन कहीं अच्छी जगह करने, पुनर्वास और रोजगार देने के अवसर देने की बात करती है। मुआवजे की रकम भी वर्तमान मूल्य से अधिक रखती है परंतु व्यवहार में यह सब वास्तविकता का रूप धारण नहीं कर पाता है। उपन्यास में ही बताया जाता है कि ग्रामीणों को विस्थापन के लिए मुआवजे की दर प्रति बीघा ₹1600 बताई गई थी परंतु उन्हें केवल ₹600 ही मिलते है बाकी ₹1000 भ्रष्टाचार की बलि चढ़ जाते है।

वास्तविकता में सरकार जो कुछ किसानों की भलाई के लिए भेजती है उसे भ्रष्ट नौकरशाह और अधिकारी गठजोड़ कर खा लेते हैं और अंत में किसान को केवल मुश्किल ही झेलनी पड़ती है। वह किसान जो अन्नदाता कहलाता है वही दो वक्त की रोटी के लिए तरस जाता है। उपन्यास का पात्र माते इस विडंबना की ओर संकेत करते हुए कहता है "साब तो चलो हमारा भरण-पोषण करते थे, हमें हर संकट की घड़ी में मदद पहुंचाते थे, कष्ट का निवारण करते थे, दुविधा से उबारते थे, सौ दो के पांच वसूलते रहे। मगर यह सरकार तो बनियों से ज्यादा बेरहम निकली इसका क्या हक बनता था हमसे कुछ लेने का ? यह तो उलटे हमीं से कुछ खरीद रही थी। फिर हमरी कीमत में इसकी हिस्सेदारी काहे की।" (डूब पृष्ठ 242)

भारत के लिए किसान और विकास परियोजनाएं दोनों ही आवश्यक है परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि हम विकास की राह में किसानों को भूल जाएं। जिस समय भारत में अनाज की कमी हो चुकी थी भारत के लोगों को भरपेट भोजन मिलना मुश्किल हो गया था तब हरित क्रांति के फलस्वरूप इन किसानों ने ही भारत को खाद्यान्न आत्मनिर्भर बनाया था। वर्तमान परिस्थितियों में विकास का प्रभाव शहरों में अधिक गांव में कम दिखाई देता है। गांव आज भी पिछड़े हुए है ; सड़क, बिजली ,संचार जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से दूर ही है। शहर और गांव में जो खाई बढ़ रही है उसकी ओर संकेत करते हुए माते कहते हैं- "हां, इतना बस जरूर सरकार के खाते में जाता है कि जब-जब शहर आता है हमरे पास, कि जब हम जाते हैं शहर के पास, अवस्था चाहे कोई भी हो, हम निहारते रह जाते हैं उजवक की नाई शहर को ।"(डूब पृष्ठ 251)

किसी परियोजना के कारण ग्रामीण किसानों के विस्थापन की समस्या जितनी पुरानी है उतनी ही यह प्रशासनिक व्यवस्था की लापरवाही को प्रदर्शित करती है। सरकार द्वारा किसानों की मर्जी के बिना फैसला लिया जाता है जिस कारण किसानों को अपनी मातृभूमि का त्याग करना पड़ता है जिसका दर्द केवल ग्रामीण जन ही समझ सकता है "ताज्जुब की बात तो यह है कि यह सब तय हुआ कब? हमसे बिना पूछे हमारी तबाही का फैसला ले लिया, ऐसा तो डाकू भी नहीं करते। वह धन जरूर लूटते हैं पर घर से बेघर नहीं करते। वह तो अमीरों को सताते हैं हां, उन्हें सताते है जो दीनो को सताते हैं, दिन रात" (डूब पृष्ठ 108)

भारत में अब शासन अंग्रेजों का नहीं बल्कि लोकतंत्र का है जो देश के लोगों से ही मिलकर बना है जिसके अंदर किसानों के हितों की सुरक्षा सर्वोपरि रखी जाएगी क्योंकि भारत एक कृषि प्रधान देश है परंतु प्रजातांत्रिक सरकार के फैसलों से विक्षुब्ध होकर माते कहते हैं- "अब तो अपना राज है, अपनी सरकार है। ना कोई राजा है, ना प्रजा ; तो क्या प्रजा ही प्रजा पर जुल्म ढा रही है? पर हमरी तो किसी प्रजा से कोई दुश्मनी नहीं है। हमरी तो जो भी बैर-प्रीति है, वो यही के लोगों से है। मगर ये सब तो हमरे अपने हैं।"(डूब पृष्ठ 109)

चुनावों की तारीख पास आते ही नेताओं के भाषणों में किसानों के हितों की बातें अच्छी मात्रा में भरी रहती हैं परंतु चुनाव के पश्चात सरकारें किसानों से जल जंगल जमीन विकास परियोजनाओं के नाम पर छीनना शुरू कर देती हैं ।माते सत्ता की ऐसी नीतियों को भलीभांति समझते हुए कहता है- "हम से वोट के सिवा तुमने कुछ चाहा है भला? हमारी जो दशा बनाई है तुमने, उसमें और देने को है ही क्या हमारे पास? तुम्हारी दी चीज जो तुम हर पांच बरस पीछे मांग ही लेते हो।कभी मुंह से हमें खबर भी नहीं देते कि तुमने हमारी चीजें बेची भी है। इसके सिवा तुमने दिया क्या है हमें? हमसे तो छीना ही है। मदरसा छीना, मोटर छीनी, सड़क छीनी, तेंदू पत्ते का रोजगार छीना, रघु साब छीने, मुसलमान भाई छीने,अट्टू साब छीने, शांति छीनी, मेलजोल छीना।"(डूब पृष्ठ 58)

विश्व में लोकतंत्र सबसे अच्छी और प्रगतिशील शासन प्रणाली है अधिकतर विकसित देशों में लोकतंत्र ही मौजूद है यह व्यवस्था देश के प्रत्येक वर्ग (किसान सहित) को सरकार बनाने के लिए अधिकार प्रदान करती है। परन्तु इसे अपने हित में प्रयोग करते हुए सरकारों ने लोकतांत्रिक सिद्धांतों को इस हद तक क्षतिग्रस्त कर दिया है कि माते जैसा ग्रामीण किसान राजतंत्र और लोकतंत्र की तुलना इस प्रकार करता है - "पुराने राजा महाराज अपनी प्रजा की खैर खबर मंत्री संत्री से लेते ही थे, गुप्त चर भी रखते थे, ताकि सही बात सही हाल मालूम हो सके। इन गुप्त चरो को सख्त हिदायत होती थी कि वह राजा को सच-सच जस की तस ही बताएं भरमाए नहीं, अंधेरे में न रखें। उन्हें अभयदान मिला होता था राजा की ओर से। तभी वे खरी खरी कहते थे। बिना लाग लपेट के बटन ओं थे सारे राज का हाल..... और एक ये है अपनी सरकार! खबर लेना तो दूर, खुद हमारे दरबज्जे आना तो सपने की बात जैसी है, संकट पर संकट बजे जा रही है निर्दोष जनता पर।"(डूब पृष्ठ 207)

किसानों को अपनी खेती की जमीन से लगाव, संवेदनाएं होती है क्योंकि यह उनके जीवन का आधार है, उन्हें दो वक्त की रोटी भी इन्हीं खेतों से दिन-रात मेहनत कर, खून-पसीना बहाने के पश्चात प्राप्त होती है परंतु ग्रामीणों को कानून का पाठ पढ़ाकर जबरदस्ती उन्हें मजबूर किया जाता है जमीन त्यागने पर। सरकार के वादों पर किसान अपना भविष्य टिकाते हुए विकास परियोजनाओं में हिस्सेदारी रखते हैं। परन्तु उन्हें कठिनाईयों के सिवा और कुछ नही मिलता है। उपन्यास का प्रमुख पात्र माते कहता है कि "कोई बताता क्यों नहीं हमें कि कब खाली करना होगा गांव? इतनी बड़ी-बड़ी बातें कर गई सरकारजू! तनिक यह भी बता देती कि हमें ले कहां जाएगी यहां से उखाड़कर? " (डूब पृष्ठ 183) वास्तविकता में किसानों के पुनर्वास की व्यवस्था कम हवा में सरकारी वादों की गूंज ज्यादा सुनाई देती है।

उपन्यासकार वीरेंद्र जैन ने अपने उपन्यास 'डूब' में विस्थापन से जुड़े भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं पर, विकास परियोजनाओं के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों , शासन और प्रशासन दोनों की निष्क्रियता साथ ही साथ किसानों की विकट परिस्थितियों को उजागर किया है। किसानों की जमीन बांध में जाने के बाद उनके पास रोजगार नहीं बचता और जिस कारण किसान ही अनाज के दाने दाने के लिए तरसने लगता है। तब ग्रामीण कहते हैं कि "कैसा फरेब है ये? कितना बड़ा झूठ है ये? कैसी खुशहाली है ये? कैसा बांध है ये?जो हमें लीलेगा वह औरों को भी लीलेगा।" (डूब पृष्ठ 108)

वर्तमान में बांध निर्माण , हाईवे निर्माण जैसी परियोजनाएं कार्यरत है जिनके चलते संबंधित ग्रामीण क्षेत्र के निवासियों विशेषकर किसानों को मुआवजे की रकम पर्याप्त नहीं मिलती और पुनर्वास एवं रोजगार के अवसर देने के वादे भी समय के साथ-

साथ झूठे प्रतीत होते हैं साथ ही विस्थापन की समस्या भूकंप, बाढ़ ,तूफान, सुनामी ,चक्रवात के कारण भी भारत में विकराल रूप ले रही है विस्थापन में भ्रष्टाचार और नौकरशाही असंवेदनशीलता पीड़ितों पर दुष्प्रभाव डालते हैं अतः विस्थापन से संबंधित निकाय का पर्याप्त बजट और उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना चाहिए। यह वर्तमान समय की मांग भी है।

निष्कर्ष:- विकास परियोजनाएं किसी देश के विकास के लिए अति आवश्यक है और कृषि किसी देश के खाद्यान आत्मनिर्भर बनने के लिए अति आवश्यक है परंतु राजनीतिक-प्रशासनिक गठजोड़ विकास और कृषि दोनों के लिए कितना हानिकारक हो सकता है यह डूब उपन्यास में यथार्थता से चित्रित किया गया है। धरातल पर योजनाओं को लापरवाही, निष्क्रियता, उत्तरदायित्वहीनता के साथ शुरू किया जाता है जिसका अंत भी नकारात्मक ही होता है। किसानों की परिस्थिति देश में आज भी दयनीय बनी हुई है। राजनेताओं द्वारा वादे मात्र चुनावी काल तक सीमित है जिन्हे पूरा नहीं किया जाता है। एक सशक्त और उत्तरदायित्व से परिपूर्ण प्रशासन एवं जागरूक नागरिकों की आवश्यकता वर्तमान देश को है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जैन, वीरेंद्र, डूब, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

डूब पृष्ठ 109

डूब पृष्ठ 242

डूब पृष्ठ 251

डूब पृष्ठ 108

डूब पृष्ठ 58

डूब पृष्ठ 207

डूब पृष्ठ 279

डूब पृष्ठ 18